इकाई 17 बौद्ध धर्म, जैन धर्म तथा अन्य धार्मिक विचार

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप यह जान पाएंगे:

- कि छठी शताब्दी ई. पू. में नये धार्मिक विचारों के उदय की पृष्ठभूमि क्या थी,
- कि बौद्ध मत एवं जैन मतों का उद्‌भव और विकास कैसे हुआ,
- कि इन धर्मों के मुख्य सिद्धान्त क्या थे,
- कि इन धर्मों का समकालीन समाज पर क्या प्रभाव पड़ा,
- कि छठी शताब्दी ई. पू. में प्रचलित अन्य अनीश्वरवादी विचार क्या थे, और
- इन धार्मिक आंदोलनों का महत्व क्या था।

17.1 प्रस्तावना

भारतीय इतिहास में छठी शताब्दी ई. पू. का बड़ा महत्व है क्योंकि यह काल नये धर्मों के विकास से सम्बद्ध है। हम पाते हैं कि इस काल में ब्राह्मणों के अनुष्ठानिक रूढ़िवादी विचारों का विरोध बढ़ रहा था। फलत: बहुत सारे अनीश्वरवादी धार्मिक आंदोलनों का उद्‌भव हुआ। इनमें से बौद्ध मत एवं जैन मत संगठित तथा लोकप्रिय धर्मों के रूप में विकसित हुए। इस इकाई में इन नये धार्मिक विचारों के उद्‌भव और महत्व को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है।

इस इकाई में सबसे पहले, अनीश्वरवादी विचारों के उद्‌भव तथा फैलाव के लिए उत्तरदायी कारणों को विश्लेषित किया गया है। फिर यह बताया गया है कि बुद्ध तथा महावीर ने किस प्रकार से मानव के दु:ख का समाधान खोजने के लिए अपने तरीके से प्रयास किए। दोनों धर्मों के उद्‌भव के कारणों में समानता है, वहीं पर दोनों धर्मों के कुछ सिद्धांत भी समान हैं। परन्तु कुछ मूल सिद्धान्तों में भिन्नता भी है। इन्हीं मुद्दों पर इस इकाई में विवेचन किया गया है।

इस इकाई में छठी शताब्दी ई. पू. में उभरे अन्य अनीश्वरवादी विचारों के विषय में भी बताया गया है। अन्त में इस तथ्य का विवेचन किया गया है कि इन नये धार्मिक आंदोलनों का तात्कालिक आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ा।

17.2 नये धार्मिक विचारों का उद्‌भव

नये धार्मिक विचारों का उद्‌भव उस युग की प्रचलित सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक परिस्थितियों के अंतर्गत निहित था। अब हम उन आधारभूत कारणों का विवेचन करेंगे जिन्होंने इनके उद्‌भव में भूमिका अदा की।

इस काल के नए समाज के संदर्भ में वैदिक धर्म पद्धति

i) जटिल तथा अर्थ-विहीन हो गयी थी। बलि एवं अनुष्ठान अक्सर बड़े पैमाने पर आयोजित किए जाने लगे। बड़े समुदायों के बिखरने के साथ-साथ इनके आयोजनों में लोगों की भागीदारी कम हो गई और समाज के कई समूहों के लिए अर्थहीन हो गई।

ii) बलि-यज्ञों तथा अनुष्ठानों के बढ़ते महत्व ने समाज में ब्राह्मण समुदाय के प्रभुत्व को स्थापित किया। वे पुजारी तथा अध्यापक, दोनों का कार्य करते थे और धार्मिक अनुष्ठानों के आयोजन पर अपने एकाधिकार के कारण वे चार वर्णों में विभाजित समाज में अपने को सर्वश्रेष्ठ मानते थे।

iii) समकालीन आर्थिक-राजनीतिक परिस्थितियों ने भी नए सामाजिक समुदायों के उद्‌भव में मदद की। ये समुदाय आर्थिक रूप से सम्पन्न थे। शहर में रहने वाले व्यापारियों तथा अमीर खेतिहर समुदायों के पास प्रचुर सम्पत्ति थी। क्षत्रिय समुदाय, चाहे वे राजतंत्र में हों चाहे गणतंत्र में, के हाथ में अब पहले से अधिक राजनीतिक शक्ति थी। ये सामाजिक समुदाय उस सामाजिक व्यवस्था का विरोध कर रहे थे, जो ब्राह्मणों ने वंश के आधार पर निर्धारित की थी। बौद्ध मत तथा जैन मत ने जन्म के आधार पर सामाजिक व्यवस्था की अवधारणा को कोई महत्व नहीं दिया जिसके कारण वैश्य इन सम्प्रदायों की ओर आकर्षित हुए। इसी तरह से ब्राह्मणों के प्रभुत्व से क्षत्रिय समुदाय अर्थात् शासक वर्ग भी नाराज था। संक्षेप में, समाज में ब्राह्मण की सर्वोच्चता ने असंतोष उत्पन्न किया और इसी ने नवीन धार्मिक विचारों के उदय में सामाजिक सहयोग प्रदान किया। यह ध्यान देने योग्य बात है कि दोनों बुद्ध तथा महावीर क्षत्रिय समुदाय से थे। मगर जटिल सामाजिक समस्याओं से जूझते हुए वे जन्म द्वारा निर्धारित सीमाओं को पार कर गए। जब हम यह जानने की कोशिश करते हैं कि उस समय के समाज में इनके विचार कितने लोकप्रिय हुए

तो हम पाते हैं कि राजाओं, बड़े व्यापारियों, अमीर गृहस्थों, ब्राह्मणों तथा वेश्याओं ने भी इनके विचारों के प्रति उत्साह दिखाया।

प्रचलित धार्मिक सम्प्रदायों की आलोचना करने वालों में बुद्ध एवं महावीर ही पहले नहीं थे। इनसे पहले दूसरे धार्मिक उपदेशकों जैसे कपि, मखल्लि, गोसाल, अजिता केशंकबलिन और पकुध कात्यापन ने वैदिक धर्म में सुधार के लिए उसकी बुराइयों को उजागर किया था। उन्होंने भी ईश्वर एवं जीवन के विषय में नवीन चिन्तन प्रस्तुत किए। नये दर्शनों को भी प्रचारित किया गया। परन्तु बुद्ध और महावीर ने नये वैकल्पिक धर्मों की व्यवस्था को प्रस्तुत किया।

यह वह पृष्ठभूमि थी जिसमें छठी शताब्दी ई. पू. में नवीन धार्मिक व्यवस्थाओं की उत्पत्ति और स्थापना हुई। इन सभी नवीन धार्मिक सम्प्रदायों में बौद्ध सम्प्रदाय तथा जैन सम्प्रदाय सबसे अधिक लोकप्रिय और अच्छी तरह से संगठित थे। अब हम बौद्ध मत और जैन मत के उद्भव तथा विकास का अलग-अलग विवेचन करेंगे।

17.3 गौतम बुद्ध और बौद्ध धर्म की उत्पत्ति

बौद्ध मत की स्थापना गौतम बुद्ध ने की थी। उनके मां-बाप ने उनका नाम सिद्धार्थ रखा था। उनके पिता शुद्धोधन शाक्यगण के मुखिया थे तथा उनकी मां का नाम माया था जो कोलियागण की राजकुमारी थी। उनका जन्म नेपाल की तराई में स्थित लुम्बिनी (आधुनिक रुमिन्दी) नामक स्थान पर हुआ था। यह जानकारी हमें अशोक के एक स्तम्भ लेख के द्वारा मिलती है। बुद्ध की वास्तविक जन्म तिथि वाद-विवाद का विषय है परन्तु अधिकतर विद्वानों द्वारा इसको लगभग 566 ई. पू. माना गया है।

यद्यपि उनका जीवन शाही ठाठ-बाट में व्यतीत हो रहा था लेकिन यह गौतम के मस्तिष्क को आकर्षित करने में असफल रहा। पारम्परिक स्रोतों के अनुसार, एक बूढ़े आदमी, एक बीमार व्यक्ति, एक मृत शरीर तथा एक सन्यासी को देखकर उन्हें बहुत दु:ख हुआ। मानव जीवन के दुखों ने गौतम पर गहरा प्रभाव डाला।

मानवता को दुखों से मुक्त कराने की खोज में उन्होंने 29 वर्ष की आयु में अपने घर, पत्नी तथा बेटे का परित्याग कर दिया। गौतम ने सन्यासी की भांति घूम-घूमकर छ: वर्ष व्यतीत किए। उन्होंने वैशाली के अलारा कालमा से ध्यान करने और उपनिषदों की शिक्षा प्राप्त की। उनकी यह शिक्षा गौतम को अन्तिम मुक्ति के लिए राह न दिखा सकी, तो उन्होंने पांच ब्राह्मण सन्यासियों के साथ उनका भी परित्याग कर दिया।

उन्होंने कठोर संयम को अपनाया और सत्य को प्राप्त करने के लिए विभिन्न कठोर यातनाएं सहन कीं। अन्तत: इसको त्याग करके वे उरूवेला (आधुनिक बोध गया के पास निरंजना नदी के किनारे) गये और एक पीपल के वृक्ष (बौद्ध वृक्ष) के नीचे ध्यान मग्न हो गये। अन्तत: अपनी समाधि के उनचासवें दिन उन्हें "सर्वोच्च ज्ञान" की प्राप्ति हुई। तब से उनको "बुद्ध" (ज्ञानी पुरुष) या "तथागत" (वह जो सत्य को प्राप्त करे) कहा जाने लगा।

यहां से प्रस्थान करके वे सारनाथ के मृगदाव वाराणसी के पास पहुंचे और वहां पर उन्होंने अपना धर्मोपदेश दिया जिसको "धर्मचक्र प्रवर्तन" (धर्म के चक्र को घुमाना) के नाम से जाना जाता है।

अश्वजित, उपालि, मोगाललना, श्रेयपुत्र और आनन्द — ये बुद्ध के पहले पांच शिष्य थे। बुद्ध ने बौद्ध संघ का सूत्रपात किया। उन्होंने अपने अधिकतर धर्मोपदेश श्रावस्ती में दिए। श्रावस्ती का धनी व्यापारी अनथापिण्डिका बुद्ध का शिष्य हो गया और उसने बौद्ध मत के लिए उदार दान दिया। जल्द ही उन्होंने अपने धर्म प्रवचन के प्रचार के लिये बहुत से स्थानों का भ्रमण करना शुरू कर दिया। वे सारनाथ, मथुरा, राजगिर, गया और पाटलिपुत्र गये। बिम्बिसार, अजातशत्रु (मगध), प्रसेनजीत (कोसल) और उदायन (कौशाम्बी) के राजाओं ने उनके सिद्धान्तों

चित्र 10 बुद्ध का जन्म

को स्वीकार किया तथा वे सत्र बुद्ध के शिष्य हो गये। वे कपिलवस्तु भी गये और उन्होंने अपनी धाय माता व बेटे राहुल को भी अपने सम्प्रदाय में परिवर्तित कर लिया।

मलल गुण की राजधानी कुसि नगर (उत्तर प्रदेश के जिले देवरिया में स्थित कसया) में 80 वर्ष की आयु में (486 ई. पू.) बुद्ध की मृत्यु हो गई। आइए अब बुद्ध की उन शिक्षाओं का विवेचन करें जिन्होंने उस समय के धार्मिक विचारों को नवीन शिक्षा प्रदान की।

17.4 बुद्ध के उपदेश

बुद्ध के मूलभूत उपदेश निम्नलिखित में संकलित हैं:

क) चार पवित्र सत्य, और

ख) अष्टांगिक मार्ग

क) निम्नलिखित चार पवित्र सत्य हैं:

i) संसार दु:खों से परिपूर्ण है।

ii) सारे दु:खों का कोई न कोई कारण है। इच्छा, अज्ञान और मोह मुख्यत: दु:ख के कारण हैं।

iii) इच्छाओं का अन्त मुक्ति का मार्ग है।

iv) मुक्ति (दु:खों से छुटकारा पाना) अष्टांगिक मार्ग द्वारा प्राप्त की जा सकती है।

ख) अष्टांगिक मार्ग में निम्नलिखित सिद्वान्त समाहित हैं:

i) **सम्यक् दृष्टि:** इसका अर्थ है इच्छा के कारण ही इस संसार में दु:ख व्याप्त हैं। इच्छा का परित्याग ही मुक्ति का मार्ग है।

ii) **सम्यक् संकल्प:** यह लिप्सा और विलासिता से छुटकारा दिलाता है। इसका उद्देश्य मानवता को प्यार करना और दूसरों को प्रसन्न रखना है।

iii) **सम्यक् वाचन** अर्थात् सदैव सच बोलना,

iv) **सम्यक् कर्म:** इसका तात्पर्य है स्वार्थ रहित कार्य करना।

v) **सम्यक् जीविका:** अर्थात् आदमी को ईमानदारी से अर्जित साधनों द्वारा जीवन-यापन करना चाहिए।

vi) **सम्यक् प्रयास:** इससे तात्पर्य है कि किसी को भी बुरे विचारों से छुटकारा पाने के लिए इन्द्रियों पर नियंत्रण होना चाहिए। कोई भी मानसिक अभ्यास के द्वारा अपनी इच्छाओं एवं मोह को नष्ट कर सकता है।

vii) **सम्यक् स्मृति:** इसका अर्थ है कि शरीर नश्वर है और सत्य का ध्यान करने से ही सांसारिक बुराइयों से छुटकारा पाया जा सकता है।

viii) **सम्यक् समाधि:** इसका अनुसरण करने से शान्ति प्राप्त होगी। ध्यान से ही वास्तविक सत्य प्राप्त किया जा सकता है।

बौद्व मत ने कर्म के सिद्वान्त पर बल दिया। वर्तमान का निर्णय भूतकाल के कार्य करते हैं। किसी व्यक्ति की इस जीवन और अगले जीवन की दशा उसके कर्मों पर निर्भर करती है।

प्रत्येक व्यक्ति अपने भाग्य का निर्माता है। अपने कर्मों को भोगने के लिए हम बार-बार जन्म लेते हैं। अगर कोई व्यक्ति किसी भी तरह का पाप नहीं करता है तो उसका पुनर्जन्म नहीं होगा। इस प्रकार बुद्व के उपदेशों का अनिवार्य तत्व या सार "कर्म-दर्शन" है।

बुद्व ने निर्वाण का प्रचार किया। उनके अनुसार यही प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का अन्तिम उद्देश्य है। इसका तात्पर्य है सभी इच्छाओं से छुटकारा, दु:खों का अन्त जिससे अन्तत: पुनर्जन्म से मुक्ति मिलती है। इच्छाओं की समाप्ति की प्रक्रिया के द्वारा कोई भी "निर्वाण" पा सकता है। इसलिए, बुद्व ने उपदेश दिया कि इच्छा को समाप्त करना ही वास्तविक समस्या है। पूजा और बलि इच्छा को समाप्त नहीं कर सकेंगे। इस प्रकार, वैदिक धर्म में होने वाले अनुष्ठानों एवं यज्ञों के विपरीत बुद्व ने व्यक्तिगत नैतिकता पर बल दिया।

बुद्व ने न ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकारा और न ही नकारा। वह व्यक्ति और उसके कार्यों के विषय में अधिक चिन्तित थे। बौद्व मत ने आत्मा के अस्तित्व को भी स्वीकार नहीं किया।

इनके अतिरिक्त बुद्व ने अन्य पक्षों पर भी बल दिया:

- बुद्व ने प्रेम की भावना पर बल दिया। अहिंसा का अनुसरण करके प्रेम को सभी प्राणी मात्र पर अभिव्यक्त किया जा सकता है। यद्यपि अहिंसा के सिद्वांत को बौद्व मत में अच्छी तरह से समझा गया था, परन्तु इसको इतना महत्व नहीं दिया गया जितना कि जैन मत में।
- व्यक्ति को मध्य मार्ग का अनुसरण करना चाहिये। कठोर सन्यास एवं उसी प्रकार विलासी जीवन से बचना चाहिये।
- महात्मा बुद्व की शिक्षा ने उस समय के ब्राह्मणवादी विचारों के सामने एक गम्भीर चुनौती प्रस्तुत की।

i) बुद्व के उदार व लोकतांत्रिक विचारों ने सभी समुदायों के लोगों को तेजी से आकर्षित किया। जाति व्यवस्था और पुजारियों की सर्वोच्चता पर बुद्व के द्वारा किये गये हमलों का समाज की नीची जाति के लोगों ने स्वागत किया। सभी जाति तथा लिंग के लोग बौद्व

सम्प्रदाय को अपना सकते थे। बौद्ध मत के अनुसार व्यक्ति की मुक्ति उसके अच्छे कार्यों के द्वारा ही सम्भव है। इसलिये, "निर्वाण" अर्थात् जीवन के अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये किसी पुजारी या मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं रह जाती थी।

ii) बुद्ध ने वेदों की सर्वोच्चता के सिद्धान्त तथा पशु-बलि का विरोध किया। उन्होंने अर्थ-विहीन तथा व्यर्थ अनुष्ठानों का बहिष्कार किया। उन्होंने कहा कि देवताओं को बलि देने से पापों को नहीं धोया जा सकता और न ही किसी पुजारी के पूजा करने से किसी पापी को लाभ होता है। इस प्रकार बुद्ध ने सामाजिक समानता के सिद्धान्तों पर बल दिया।

बौद्ध मत का थोड़े ही समय में एक संगठित धर्म के रूप में उद्‌भव हुआ और बुद्ध के उपदेशों को संग्रहीत कर लिया गया।

बौद्ध धर्म के इस संग्रहीत साहित्य (उपदेशों का संग्रह-पिटक) को तीन भागों में बाँटा गया है:

i) सुत्त-पिटक में पांच निकाय हैं जिनमें धार्मिक सम्भाषण तथा बुद्ध के संवाद संकलित हैं। पांचवें निकाय में जातक कथायें (बुद्ध के जन्म से सम्बद्ध कहानियाँ) हैं।

ii) विनय पिटक में भिक्षुओं के अनुशासन से संबंधित नियम हैं।

iii) अभिधम्म-पिटक में बुद्ध के दार्शनिक विचारों का विवरण है। इसकी प्रश्न-उत्तर के रूप में लिया गया है।

चित्र 11 उपदेश देते हुये बुद्ध (गुप्त काल)

17.5 बौद्ध मत का विकास

अब हम उन कारणों पर प्रकाश डालेंगे जिन्होंने बौद्ध मत के विकास में योगदान दिया और इसको एक लोकप्रिय धर्म बनाया।

17.5.1 बौद्ध मत का विस्तार

इसके संस्थापक के जीवन काल में ही बड़ी संख्या में लोगों ने बौद्ध मत को स्वीकार कर लिया था। उदाहरण के लिए, मगध, कोसल, और कौशाम्बी की जनता ने बौद्ध मत को स्वीकार किया। शाक्य, वज्जि और मल्ल जनपदों की जनता ने भी इसका अनुसरण किया। अशोक एवं कनिष्क ने बौद्ध मत को राज्य धर्म बनाया और यह मध्य एशिया, पश्चिम एशिया और श्रीलंका में फैल गया।

बौद्ध मत जनता के बड़े हिस्सों में लोकप्रिय होने के निम्नलिखित कारण थे:

- व्यावहारिक नैतिकता पर बल देना, मानव जाति की समस्याओं का सहज स्वीकृत समाधान और साधारण दर्शन ने जनता को बौद्ध मत की ओर आकर्षित किया।
- बौद्ध धर्म में संकलित सामाजिक समानता के विचारों के कारण साधारण जनता ने बौद्ध मत को स्वीकार किया।
- अनाथपिण्डिका जैसे व्यापारी और आम्रपाली जैसी देवदासी ने इस मत को स्वीकार किया क्योंकि उन्होंने इस धर्म में उचित सम्मान प्राप्त किया।
- विचारों को व्यक्त करने के लिए लोकप्रिय भाषा पाली के प्रयोग ने भी धर्म के विस्तार में मदद दी। संस्कृत का प्रयोग करने के कारण ब्राह्मण धर्म सीमा में बंध गया था क्योंकि वह जन-भाषा नहीं थी।
- राजाओं के द्वारा संरक्षण प्रदान किये जाने के कारण बौद्ध धर्म का विस्तार तेजी के साथ हुआ। उदाहरण के लिए ऐसी धारणा है कि अशोक ने अपने पुत्र महेन्द्र तथा पुत्री संगमित्रा को श्रीलंका में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए भेजा। उसने बहुत से बौद्ध विहारों को स्थापित किया और संघ के लिए उदार भाव से दान आदि भी दिया।

- बौद्ध मत को प्रभावशाली ढंग से फैलाने में संघ की संस्था ने संगठित रूप से योगदान दिया।

17.5.2 बौद्ध-संघ (संस्था के रूप में)

संघ बौद्ध मत की धार्मिक व्यवस्था थी। यह अच्छी प्रकार से संगठित एवं शक्तिशाली संस्था थी और इसने बौद्ध मत को लोकप्रिय बनाया। 15 वर्ष से अधिक आयु वाले सभी नागरिकों के लिए इसकी सदस्यता खुली थी चाहे वे किसी भी जाति के हों। अपराधी, कुष्ठ रोगी तथा संक्रामक रोग से पीड़ित लोगों को संघ की सदस्यता नहीं दी जाती थी। प्रारम्भ में गौतम बुद्ध महिलाओं को संघ का सदस्य बनाने के पक्ष में नहीं थे। लेकिन उनके मुख्य शिष्य आनन्द एवं उनकी धाय मां महाप्रजापति गौतमी के लगातार निवेदन करने पर उन्होंने उनको संघ में प्रवेश दिया।

भिक्षुओं को प्रवेश लेने पर विधिपूर्वक अपना मुंडन कराना एवं पीले या गेरूए रंग का लिबास पहनना पड़ता था। भिक्षुओं से आशा की जाती थी कि वे नित्य बौद्ध मत के प्रचार के लिए जायेंगे और भिक्षा प्राप्त करेंगे। वर्षा ऋतु के चार महीनों में वे एक निश्चित बिस्तर लगाने तथा समाधि करते थे। इसको आश्रय या "वशा" कहा जाता था। संघ लोगों को शिक्षा देने का भी काम करता था। ब्राह्मणवाद के विपरीत बौद्ध मत में समाज के सभी लोग शिक्षा ग्रहण कर सकते थे। स्वाभाविक रूप से जिन लोगों को ब्राह्मणों ने शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार से वंचित कर दिया था उनको बौद्ध मत में शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हो गया और इस प्रकार शिक्षा समाज के काफी तबकों में फैल गई।

संघ का संचालन जनतांत्रिक सिद्धान्तों के अनुसार होता था और अपने सदस्यों को अनुशासित करने की शक्ति भी इसी में निहित थी। यहां पर भिक्षुओं एवं भिक्षुणियों के लिए एक आचार-संहिता थी और वे इसका पालन करते थे। गलती करने वाले सदस्य को संघ दंडित कर सकता था।

17.5.3 बौद्ध मत की सभायें

अनुश्रुतियों के अनुसार बुद्ध की मृत्यु के थोड़े समय बाद 483 ई. पू. में राजगृह के पास सप्तपर्णि गुफा में बौद्ध मत की प्रथम सभा हुई। इस सभा की अध्यक्षता महाकस्यप ने की। बुद्ध की शिक्षा को पिटकों में विभाजित किया गया, जिनके नाम इस प्रकार हैं:

क) विनय-पिटक, और

ख) सुत्त-पिटक।

विनय-पिटक की रचना उपाली के नेतृत्व में की गई और सुत्त-पिटक की रचना आनन्द के नेतृत्व में की गई।

दूसरी सभा का आयोजन 483 ई. पू. में वैशाली में हुआ। पाटलिपुत्र तथा वैशाली के भिक्षुओं ने कुछ नियमों का निर्धारण किया परन्तु इन नियमों को कौशाम्बी व अवन्ति के भिक्षुओं के द्वारा बुद्ध की शिक्षा के प्रतिकूल घोषित कर दिया गया। दोनों विरोधी गुटों के बीच कोई भी समझौता कराने में सभा असफल रही। बौद्ध धर्म का विभाजन स्थायी तौर पर दो बौद्ध सम्प्रदायों-स्थविरवादी व महासांधिक में हो गया। पहले सम्प्रदाय ने विनय-पिटक में वर्णित रूढ़िवादी विचारों को अपनाया और दूसरे ने नये नियमों का समर्थन किया और फिर उनमें परिवर्तन किए।

तीसरी सभा का आयोजन अशोक के शासनकाल में मोग्गालिपुत्तत्स्सि की अध्यक्षता में पाटलिपुत्र में किया गया। इस सभा में सिद्धान्तों की दार्शनिक विवेचना को संकलित किया गया तथा इसको अभिधम्म-पिटक के नाम से जाना जाता है। इस सभा में बौद्धमत को असंतुष्टों एवं नये परिवर्तनों से मुक्त कराने का प्रयास किया गया। 60,000 "पथभ्रष्ट" भिक्षुओं को बौद्ध मत से इस सभा द्वारा निष्कासित कर दिया गया। सप्त उपदेशों के साहित्य को परिभाषित किया गया तथा आधिकारिक तौर पर विघ्न पैदा करने वाली प्रवृत्तियों से भी निबटा गया।

चौथी सभा का आयोजन काश्मीर में कनिष्क के शासन काल में हुआ। इस सभा में उत्तरी भारत के हीनयान सम्प्रदाय को मानने वाले एकत्रित हुए। तीन पिटकों पर तीन टीकाओं (भाष्यों) का संकलन इस सभा द्वारा किया गया। इसने उन विवादग्रस्त मतभेद वाले प्रश्नों का निबटारा किया जो श्रावस्तीवासियों एवं काश्मीर तथा गन्धार के प्रचारकों के मध्य उत्पन्न हो गये थे।

17.5.4 बौद्ध धर्म के सम्प्रदाय

वैशाली में आयोजित दूसरी सभा में बौद्ध धर्म का निम्न दो सम्प्रदायों में विभाजन हुआ:

क) स्थविरवादी

ख) महासांघिक

स्थविरवादी धीरे-धीरे ग्यारह सम्प्रदायों और महासांधिक सात सम्प्रदायों में बंट गए। ये अठारह सम्प्रदाय "हीनयान" मत में संगठित हुए।

- स्थविरवादी कठोर भिक्षुक जीवन और मूल निर्देशित कड़े अनुशासित नियमों का अनुसरण करते थे।
- वह समूह जिसने संशोधित नियमों को माना, वह महासांधिक कहलाया।

महायान सम्प्रदाय का विकास चौथी बौद्ध सभा के बाद हुआ। हीनयान सम्प्रदाय जो बुद्ध की रूढ़िवादी शिक्षा में विश्वास करता था, का जिस गुट ने विरोध किया और जिन्होंने नये विचारों को स्वीकार किया, वे लोग महायान सम्प्रदाय के समर्थक कहलाये। उन्होंने बुद्ध की प्रतिमा बनायी और ईश्वर की भांति उसकी पूजा की। प्रथम सदी ई. कनिष्क के शासन काल में कुछ सैद्धांतिक परिवर्तन किए गए।

बोध प्रश्न 1

1) "निर्वाण" एवं "कर्म" के बौद्धवादी दर्शन की विवेचना पांच पंक्तियों में कीजिए।

....

....

....

....

....

2) बौद्ध धर्म के विकास के लिए उत्तरदायी कारण क्या थे? पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

3) निम्नलिखित कथनों पर सही (✓) या गलत (×) का निशान लगाइए:

   i) बढ़ते व्यापार एवं वाणिज्य ने अनीश्वरवादी विचारों के उद्भव में मदद की।

   ii) बुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश बोध गया में दिया।

   iii) बुद्ध ने कठोर सन्यासी जीवन का प्रचार किया।

   iv) बुद्ध पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करते थे।

   v) बुद्ध ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करते थे।

17.6 जैन धर्म की उत्पत्ति

जैन श्रुतियों के अनुसार, जैन धर्म की उत्पत्ति एवं विकास के लिये 24 तीर्थाकर उत्तरदायी थे। इनमें से पहले बाईस की ऐतिहासिकता संदिग्ध है। परन्तु अन्तिम दो तीर्थाकर पार्श्वनाथ और महावीर की ऐतिहासिकता को बौद्ध ग्रंथों ने प्रमाणित किया है।

17.6.1 पार्श्वनाथ

जैन श्रुतियों के अनुसार तेइसवें तीर्थाकर पार्श्वनाथ बनारस के राजा अश्वसेन एवं रानी वामा के पुत्र थे। उन्होंने 30 वर्ष की आयु में सिंहासन का परित्याग कर दिया और वे सन्यासी हो गए। 84 दिन की तपस्या के उपरान्त उनको ज्ञान की प्राप्ति हुई। उनकी मृत्यु महावीर से लगभग 250 वर्ष पहले सौ वर्ष की आयु में हुई। पार्श्वनाथ "पदार्थ" की अनन्तता में विश्वास करते थे। वह अपने पीछे अपने समर्थकों की काफी बड़ी संख्या छोड़ गए। पार्श्वनाथ के शिष्य सफेद वस्त्रों को धारण करते थे।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि महावीर से पूर्व भी किसी न किसी रूप में जैन धर्म का अस्तित्व था।

17.6.2 महावीर

चौबीसवें तीर्थाकर वर्धमान महावीर थे। उनका जन्म कुण्डग्राम (बासूकुण्ड), वैशाली के पास (ज़िला मुजफफरपुर, बिहार) में 540 ई. पू. में क्षत्रिय परिवार में हुआ था। उनके पिता सिद्धार्थ ज्ञात्रक क्षत्रिय गण के मुखिया थे। उनकी माता लिच्छिवि राजकुमारी थी, जिसका नाम त्रिशला था। वर्धमान ने अच्छी शिक्षा प्राप्त की और उनका विवाह यशोदा के साथ हुआ। उससे उनके एक पुत्री थी।

30 वर्ष की आयु में महावीर ने अपने घर का परित्याग किया और वह सन्यासी हो गये।

पहले उन्होंने एक वस्त्र धारण किया और फिर उसका भी तेरह मास के उपरान्त परित्याग कर दिया तथा बाद में वे "नग्न भिक्षु" की भांति भ्रमण करने लगे। घोर तपस्या करते हुए 12 वर्ष तक एक सन्यासी का जीवन व्यतीत किया।

अपनी तपस्या के 13वें वर्ष में, 42 वर्ष की आयु में, उनको "सर्वोच्च ज्ञान" (केवालिन्) की प्राप्ति हुई। बाद में उनकी प्रसिद्धि "महावीर (सर्वोच्च यौद्धा)" या "जिन" (विजयी) के नामों से हुई। उनको "निग्रंथ" (बन्धनों से मुक्त) के नाम से भी जाना जाता था।

अगले 30 वर्षों तक वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करते रहे और कोसल, मगध तथा अन्य पूर्वी क्षेत्रों में अपने विचारों का प्रचार किया। वह एक वर्ष में आठ माह विचरण करते थे और वर्षा ऋतु के चार माह पूर्वी भारत के किसी प्रसिद्ध नगर में व्यतीत करते। वह अक्सर बिम्बिसार तथा अजातशत्रु के दरबारों में भी जाते थे। उनकी मृत्यु 72 वर्ष की आयु में पटना के समीप पावा नामक स्थान पर 486 ई. पू. में हुई।

17.7 महावीर की शिक्षायें

महावीर ने पार्श्वनाथ द्वारा प्रतिपादित किए गए धार्मिक विचारों को ही अधिकतर स्वीकार किया। तब भी उन्होंने उसमें कुछ संशोधन किया और कुछ जोड़ा।

पार्श्वनाथ ने निम्नलिखित चार सिद्धांतों का प्रचार किया था:

क) सत्य

ख) अहिंसा

चित्र 12 जैन तीर्थंकर (गुप्त काल)

ग) किसी प्रकार की कोई सम्पत्ति न रखना

घ) गिरी हुई या पड़ी हुई सम्पत्ति को ग्रहण न करना। इसी में महावीर ने "ब्रह्मचर्य व्रत का पालन" करना भी जोड़ दिया।

महावीर का विश्वास था कि आत्मा (जीव) व पदार्थ (अजीव) अस्तित्व के दो मूलभूत तत्व हैं। उनके अनुसार, पूर्व जन्मों की इच्छाओं के कारण आत्मा दासत्व की स्थिति में है। लगातार प्रयासों के माध्यम से आत्मा की मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। यही आत्मा की अन्तिम मुक्ति या मोक्ष है। यह मुक्त आत्मा "पवित्र आत्मा" हो जाती है।

जैन धर्म के अनुसार, मानव अपने भाग्य का स्वयं रचयिता है और वह पवित्र, सदाचारी एवं आत्म-त्यागी जीवन का अनुसरण करके ही मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। निम्नलिखित तीन सिद्धान्तों (तीन गुणव्रत) का अनुसरण करके मोक्ष (निर्वाण) प्राप्त किया जा सकता है:

i) उचित विश्वास

ii) उचित ज्ञान, और

iii) उचित कार्य।

"निर्वाण" या आध्यात्मिकता की सर्वोच्च स्थिति को प्राप्त करने के लिए उन्होंने घोर वैराग्य और कठोर तपस्या पर ज़ोर दिया। उनका विश्वास था कि सृष्टि की रचना किसी सर्वोच्च शक्ति के द्वारा नहीं की गयी। उत्थान-पतन के अनादि नियम के अनुसार, सृष्टि कार्य करती है।

उसका विचार था कि सभी चेतन या अचेतन वस्तुओं में आत्मा का वास है। उसका विश्वास था कि उनका किसी भी प्रकार से अपकार करने पर वे दु:ख महसूस करते हैं।

उन्होंने वेदों के प्रभुत्व का तिरस्कार किया और वैदिक अनुष्ठानों तथा ब्राह्मणों की सर्वोच्चता का भी विरोध किया।

गृहस्थों एवं भिक्षुओं, दोनों के लिए आचार-संहिता को अनुसरणीय बताया। बुरे कर्मों से बचने के लिए एक गृहस्थ को निम्नलिखित पांच व्रतों का पालन करना चाहिए:

i) परोपकारी होना,

ii) चोरी न करना,

iii) व्याभिचार से बचना,

iv) सत्य वचन, और

v) आवश्यकता से अधिक धन संग्रह न करना।

उन्होंने यह भी निर्देशित किया कि प्रत्येक गृहस्थ को जरूरतमंदों को प्रत्येक दिन पका हुआ भोजन खिलाना चाहिए।

उन्होंने प्रचारित किया कि छोटे पुजारियों को कृषि कार्य नहीं करना चाहिए क्योंकि इस कार्य में पेड़-पौधे एवं जन्तुओं का अन्त होता है।

एक भिक्षु को कठोर नियमों का पालन करना पड़ता था। उसको सभी सांसारिक चीज़ों का परित्याग करना होता। उसको अपने सिर के प्रत्येक बाल को उखाड़ना होता था। वह केवल दिन के समय ही चल सकता था जिससे कि किसी भी प्रकार के जीव हत्या न हो या उनको कोई भी हानि न पहुंचे। उसको स्वयं को इस प्रकार से साधना करनी होती थी कि अपनी ज्ञानेन्द्रियों पर पूर्ण नियंत्रण कर सके। जैन धर्म का विश्वास था कि मोक्ष प्राप्ति के लिए एक भिक्षु का जीवन अनिवार्य था और एक गृहस्थ इसको प्राप्त नहीं कर सकता था।

अनुश्रुतियों के अनुसार महावीर द्वारा शिक्षित किए गए मूल सिद्धान्तों को 14 ग्रंथों में संकलित किया गया था तथा जिनको "पर्वों" के नाम से जाना जाता है। पाटलिपुत्र की प्रथम सभा में स्थूलभद्र ने जैन धर्म को 12 "अंगों" में विभाजित किया। इसको श्वेताम्बर सम्प्रदाय ने स्वीकार किया। परन्तु दिगम्बर सम्प्रदाय के लोगों ने यह कहकर इसे मानने से इंकार कर दिया कि सभी पुराने धर्म ग्रन्थ खो चुके हैं। दूसरी सभा का आयोजन वल्लभि में हुआ और इसमें उपंगों के नाम से नयी श्रुतियों को जोड़ा गया।

12 अंगों में आचारंग सूत्र और भगवती सूत्र सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। पहले में उन नियमों का वर्णन है जिनका जैन भिक्षुओं को अनुसरण करना चाहिए, दूसरे में जैन धर्म के सिद्धान्तों का विशद रूप से वर्णन किया गया है।

17.8 जैन धर्म का विकास

महावीर की शिक्षा जनता के बीच बड़ी लोकप्रिय हुई और समाज के विभिन्न तबके इसकी ओर आकर्षित हुए। बौद्ध धर्म की भांति, जैन धर्म में भी समय-समय पर परिवर्तन होते रहे। अब हम देखेंगे कि इस धर्म के विस्तार में किन कारकों ने योगदान दिया और क्या विकास हुए।

17.8.1 जैन धर्म का विस्तार

महावीर के 11 शिष्य थे जिनको गन्धर्व या सम्प्रदायों का प्रमुख कहा जाता था। आर्य सुधर्मा अकेला ऐसा गन्धर्व था जो महावीर की मृत्यु के पश्चात् भी जीवित रहा और जो जैन धर्म का प्रथम "थेरा" या मुख्य उपदेशक हुआ। उसकी मृत्यु महावीर की मृत्यु के 20 वर्ष पश्चात् हुई। राजा नन्द के काल में जैन धर्म के संचालन का कार्य दो "थेरों" (आचार्यों) द्वारा किया जाता था:

i) सम्भूताविजय, और

ii) भद्रबाहु।

छठे थेरा (आचार्य) भद्रबाहु, मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के समकालीन थे।

धीरे-धीरे महावीर के समर्थक सारे देश में फैल गए। जैन धर्म को शाही संरक्षण की कृपा भी रही। जैन अनुश्रुतियों के अनुसार, अजातशत्रु का उत्तराधिकारी उदयन, जैन धर्म का अनुयायी था। सिकन्दर के भारत पर आक्रमण के समय जैन भिक्षुओं को सिन्धु नदी के किनारे भी पाया गया था। चन्द्रगुप्त मौर्य जैन धर्म का अनुयायी था और उसने भद्रबाहु के साथ दक्षिण की ओर प्रवास किया तथा जैन धर्म का प्रचार किया। पहली सदी ई. में मथुरा एवं उज्जैन जैन धर्म के प्रधान केन्द्र बन गए।

बौद्ध धर्म की तुलना में जैन धर्म की सफलता शानदार थी। इसकी सफलता का एक मुख्य कारण था कि महावीर एवं उसके अनुयायियों ने संस्कृत के स्थान पर लोकप्रिय भाषा (प्राकृत, धार्मिक साहित्य को अर्ध-मगधी में लिखा गया) का प्रयोग किया। जनता के लिए सरल एवं घरेलू निर्देशों ने लोगों को आकर्षित किया। जैन धर्म को राजाओं के द्वारा संरक्षण दिये जाने के कारण भी लोगों के मस्तिष्क में इसका स्थान बना।

17.8.2 जैन सभायें

चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन की समाप्ति के समीप दक्षिण बिहार में भयंकर अकाल पड़ा। यह 12 वर्षों तक चला। भद्रबाहु और उनके शिष्यों ने कर्नाटक राज्य में श्रावण बेल गोल की ओर विस्थापन किया। अन्य जैन मुनि स्थूलबाहुभद्र के नेतृत्व में मगध में ही रह गये। उन्होंने पाटलिपुत्र में 300 ई. पू. के आस-पास सभा का आयोजन किया। इस सभा में महावीर की पवित्र शिक्षाओं को 12 अंगों में विभाजित किया गया।

दूसरी जैन सभा का आयोजन 512 ई. में गुजरात में वल्लभी नामक स्थान पर देवर्धिमणी क्षमा श्रमण की अध्यक्षता में किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य धार्मिक शास्त्रों को एकत्र एवं उनको पुन: क्रम: से संकलित करना था। किन्तु प्रथम सभा में संकलित बारहवां अंग इस समय खो गया था। शेष बचे हुए अंगों को अर्धमगधी में लिखा गया।

17.8.3 सम्प्रदाय

जैन धर्म में फूट पड़ने का समय लगभग 300 ई. पू. माना जाता है। महावीर के समय में ही एक वस्त्र धारण करने को लेकर मतभेद स्पष्ट होने लगे थे। श्रावणबेलगोल से मगध वापस लौटने के बाद भद्रबाहु के अनुयायियों ने इस निर्णय को मानने से इन्कार कर दिया कि 14 पर्व खो गये थे। मगध में ठहरने वालों तथा प्रस्थान करने वालों में मतभेद बढ़ते ही गये। मगध में ठहरने वाले सफेद वस्त्रों को धारण करने के अभ्यस्त हो चुके थे और वे महावीर की शिक्षाओं से दूर होने लगे जबकि पहले वाले नग्न अवस्था में रहते और कठोरता से महावीर की शिक्षाओं का अनुसरण करते। जैन धर्म का प्रथम विभाजन दिगम्बर (नग्न रहने वालों) और श्वेताम्बर (सफेद वस्त्र धारण करने वालों) के बीच हुआ। अगली शताब्दियों में पुन: दोनों सम्प्रदायो में कई विभाजन हुए। इनमें महत्वपूर्ण वह सम्प्रदाय था जिसने मूर्ति-पूजा को त्याग दिया और ग्रंथों की पूजा करने लगे। वे श्वेताम्बर सम्प्रदाय में "तेरापन्थी" कहलाये और दिगम्बर सम्प्रदाय में समचास कहलाये। यह सम्प्रदाय छठी ईसवी में अस्तित्व में आया।

17.9 अन्य अनिश्वरवादी विचार

इस काल में वैदिक धर्म से भिन्न दूसरे अन्य विचार भी प्रचलित थे। बाद में यह छोटे सम्प्रदायों के रूप में सामने आये। उनमें आजीवक सम्प्रदाय के अनुयाइयों की संख्या काफी अधिक थी और वे भली प्रकार से संगठित थे।

17.9.1 आजीवक

आजीवकों के विषय में कहा जाता है कि वे शूद्र सन्यासी थे। ऐसा कहा जाता है कि इस सम्प्रदाय का संस्थापक नन्द वंश था और जिसका अनुसरण किससंकिक्षा के द्वारा किया गया। तीसरा इस धर्म का मुख्य प्रवर्तक मक्खालिपुत्र गोसाल था, जिसने इस सम्प्रदाय को लोकप्रिय बनाया। उसने "कर्म" की अवधारणा को नकारा और तर्क दिया कि मनुष्य नियति के अधीन है। आजीवक विश्वास करते थे कि किसी व्यक्ति के विचार एवं कार्य पहले ही निश्चित हो जाते हैं (जन्म से पूर्व निश्चित होना)। वे विश्वास नहीं करते थे कि मानव के दु:खों का कोई विशेष कारण है या फिर इन दु:खों से मुक्ति मिल सकती है। वे मानव के प्रयासों में भी विश्वास नहीं करते थे और उनका विचार था कि सभी प्राणी मात्र अपने भाग्य के समक्ष असहाय हैं। गोसाल ने कहा कि सभी को दु:खों से होकर गुजरना पड़ता है और इसका अन्त निश्चित चक्र को पूरा करने पर ही होगा। कोई भी मानव प्रयास समय की परिधि को न कम कर सकता है और न बढ़ा सकता है। गोसाल के अनुयायी कोसल की राजधानी श्रावस्ती के चारों ओर केन्द्रित हो गये और वहीं पर वह प्रचार करते थे। महावीर से 16 वर्ष पूर्व गोसाल की मृत्यु हो गई।

17.9.2 अन्य विचार

चार्वाक सम्प्रदाय के लोग पूर्ण भौतिकवादी थे। उनका विचार था कि मनुष्य मिट्टी का बना है और मिट्टी में मिल जाएगा। इसलिए मानव जीवन का उद्देश्य भौतिक सुख का भोग करना होना चाहिए। पुराण कस्यप ने अक्रिय या सांख्य दर्शन का प्रचार किया। वह एक ब्राह्मण शिक्षक था और उसका मुख्य सिद्धान्त था कि कार्य गुण या दोष का निर्धारण नहीं करता। उसके अनुसार, अगर कोई आदमी सृष्टि के सभी जीव-जन्तुओं का वध कर दे तब भी वह किसी पाप का भागीदार नहीं होगा। इसी भांति वह कोई पुण्य नहीं प्राप्त करेगा चाहे वह कितने भी अच्छे कार्य करे यहां तक कि वह गंगा के किनारे भी खड़ा रहे। इसी प्रकार, आत्म-नियंत्रण, दानता और सत्यवादिता उसके लिए कोई भी गुण प्राप्त करने में सहायक नहीं होगी। अजित के शकम्बलिन ने भी प्रचारित किया कि मृत्यु के साथ प्रत्येक वस्तु समाप्त हो जाती है और मृत्यु के बाद आगे कोई जीवन नहीं होता। वह इस बात में कोई विश्वास नहीं करता था कि कोई अच्छा या बुरा कार्य करता है या किसी के अधिकार में उच्च तथा आलौकिक शक्तियां हैं। इस सम्प्रदाय के अनुसार, सांसारिक सुखों को भोगने में कोई बुराई नहीं है और वध करने में भी कोई पाप नहीं है। याकूध कात्यासायन ने अशाश्वतवाद के सिद्धान्तों का प्रवर्तन किया। इसके अनुसार, सात तत्व हैं जो स्थिर हैं और जो किसी भी प्रकार से दु:ख या सुख में योगदान नहीं करते। शरीर अन्तत: इन सात तत्वों में विलीन हो जाता है।

17.10 नवीन धार्मिक आंदोलनों का प्रभाव

नये धार्मिक विचारों के प्रादुर्भाव एवं विकास ने समकालीन सामाजिक जीवन में कुछ विशेष परिवर्तन किए। उनमें कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन निम्नलिखित हैं:

i) इस काल में सामाजिक समानता के विचार को लोकप्रिय किया गया। बौद्ध मतालम्बियों तथा जैनियों ने जाति-व्यवस्था को कोई महत्व नहीं दिया। उन्होंने विभिन्न जातियों के लोगों को अपने धर्म में स्वीकृत किया। युगों से समाज में ब्राह्मणों के स्थापित प्रभुत्व को यह एक महान चुनौती थी। बौद्ध व्यवस्था में महिलाओं को स्वीकार करने का समाज पर

एक विशेष प्रभाव हुआ क्योंकि इस कार्य ने महिलाओं को पुरुषों के समान स्थान समाज में प्रदान किया।

ii) ब्राह्मणिक साहित्य में व्यवसाय करने वाले लोगों को छोटा स्थान दिया गया था। समुद्र यात्रा की भी निन्दा की गई थी। लेकिन बौद्ध धर्म और जैन धर्म ने जाति व्यवस्था को कोई महत्व नहीं दिया और न ही समुद्र यात्रा को गलत समझा। इसलिए इन नये धर्मों ने व्यापारिक समुदाय को काफी उत्साहित किया। इससे भी अधिक इन दोनों धर्मों के द्वारा "कर्म" की अवधारणा पर भविष्य के जीवन के लिए बल देना अप्रत्यक्ष रूप से व्यापारी समुदाय की गतिविधियों के लिए अनुकूल था।

iii) नये धर्मों ने प्राकृत, पाली और अर्ध-मगधी जैसी भाषाओं को महत्व दिया। बौद्ध एवं जैन दर्शनों की इन भाषाओं में विवेचना की गई और बाद में धार्मिक पुस्तकों को स्थानीय भाषाओं में लिखा गया। इसने स्थानीय भाषाओं के साहित्य के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। जैनियों ने अपने धार्मिक उपदेशों को अर्ध-मगधी भाषा में लिखकर प्रथम बार साहित्य को मिश्रित भाषा में लिखने का स्वरूप प्रदान किया।

बोध प्रश्न 2

1) जैन धर्म के मूलभूत सिद्धान्त क्या हैं ? 100 शब्दों में उत्तर लिखिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) आजीवक कौन हैं ? उनके विचार क्या हैं ? पांच पंक्तियों में उत्तर लिखिए।

....
....
....
....
....

3) निम्न कथनों में कौन-सा कथन सही (✓) है और कौन-सा गलत (×), निशान लगाइए:

i) पार्श्वनाथ के चार सिद्धान्तों के साथ महावीर ने ब्रह्मचर्य का सिद्धान्त जोड़ा।

ii) महावीर सर्वोच्च रचयिता में विश्वास नहीं करते थे।

iii) "निर्वाण" की अवधारणा बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म में एक ही है।

iv) महावीर के सिद्धान्तों के मूल ग्रंथों को "पर्व" के नाम से जाना जाता है।

v) अनीश्वरवादी सम्प्रदायों के प्रादुर्भाव के कारण स्थानीय भाषाओं के साहित्य के विकास में हुआ।

17.11 सारांश

इस इकाई में आपने छठी शताब्दी ई. पू. मे उत्तरी भारत में नवीन धार्मिक विचारों के उद्‌भव और स्थापित होने के विषय में पढ़ा। समकालीन सामाजिक-आर्थिक आवश्यकताओं ने इन नवीन धार्मिक विचारों के प्रादुर्भाव में विशेष योगदान किया। इनमें से बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म लोगों में बड़े लोकप्रिय हुए। आपसी मतभेद होने के बावजूद भी दोनों धर्मों ने मानवता, नैतिक जीवन, "कर्म" और "अहिंसा" पर ज़ोर दिया। जाति-व्यवस्था, ब्राह्मणिक प्रभुत्व, पशु-बलि और ईश्वर के विचार के दोनों ही कठोर आलोचक थे। स्थापित वैदिक धर्म के लिए यह सीधी चुनौती थी। इसके अतिरिक्त अन्य अनीश्वरवादी सम्प्रदायों जैसे आजीवक और उनके विचारों के विषय में भी आपने जाना। इन सबके कारण लोगों के दृष्टिकोण में एक विशेष परिवर्तन हुआ और परिणामत: उन्होंने युगों लम्बी ब्राह्मणिक धर्म की सर्वोच्चता के प्रभुत्व पर प्रश्न लगाना प्रारम्भ कर दिया।

17.12 शब्दावली

अहिंसा: किसी को न मारना और न ही हिंसा करना।

अनीश्वरवादी: जो ईश्वर में विश्वास न रखे।

भौतिकवाद: भौतिक वस्तुओं पर अधिक बल देना।

पिटक: बौद्ध धर्म के धार्मिक ग्रंथ।

पर्व: जैनियों के धार्मिक ग्रंथ।

सम्प्रदाय: मत एवं विश्वास के आधार पर लोगों या गुटों का एकीकरण।

तीर्थांकर: जैन धर्म के वे विद्वान या गुरु, जो सर्वोच्च ज्ञान रखते हैं।

17.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपको यहां लिखना है कि बुद्ध का "निर्वाण" व "कर्म" से क्या तात्पर्य था। देखिए भाग 17.4

2) आपको अपने उत्तर में बौद्ध धर्म के व्यावहारिक पक्ष, इसका सामाजिक समानता पर बल, लोकप्रिय भाषा आदि को सम्मिलित करना चाहिए। देखिए उपभाग 17.5.1

3) i) ✓
ii) ✗
iii) ✗
iv) ✓
v) ✗

बोध प्रश्न 2

1) आपको पांच सिद्धान्तों अर्थात् सत्य, अहिंसा, कोई सम्पत्ति नहीं रखना, कुछ ग्रहण न करना, ब्रह्मचर्य का विवेचन करना — बताना है और फिर उचित विश्वास, उचित ज्ञान, और उचित कार्य जैसे सिद्धान्तों का अनुसरण करके कोई कैसे निर्वाण प्राप्त कर सकता है, का भी विवेचन देना है। देखिए भाग 17.7

2) नन्द वंश ने जिस सम्प्रदाय की स्थापना की, उसको शुद्ध सन्यासियों का सम्प्रदाय कहा जाता है। उनका विश्वास था कि आदमी प्रकृति के नियमों कें नियंत्रण में है। देखिए भाग 17.10.1

3) i) ✓
ii) ✓
iii) ×
iv) ✓
v) ✓

इस खंड के लिये कुछ उपयोगी पुस्तकें

Ghosh A, *The City in Early Historical India,* Simla, 1973.

Sharma, R.S, *Material Cultures and Social Formations in Ancient India,* New Delhi, 1983

Wagle, N, **Society at the Time of Buddha,** Bombay, 1966.

बाशम, ए. एल, **अद्‌भुत भारत**, आगरा

थापर, रोमिला, **भारत का इतिहास**

कोशाम्बी, डी. डी., **प्राचीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता**